प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था की उपादेयता तथा महत्व

डॉ0 देवेन्द्र भूषण
Ph.D. UGC NET(HISTORY)
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

जनि धातु में सम् तथा उपसर्ग से बना समाज शब्द सम्यक् प्रकार से विशिष्ट क्रम में जन्म लेने वाले प्राणी की ओर संकेत करता है इस प्रकार यदि व्युप्तत्तितः विचार किया जाय तो समाज मानव का पर्याय है। प्रतीत होता है कि यह समाज शब्द मानव के लिये तभी प्रयुक्त हुआ होगा जब मानव पशुतुल्य अवस्था से विकसित हो गया होगा। यह तो निर्विवाद सत्य है कि अत्यन्त प्रारम्भ में इस मानव का जीवन पशुतुल्य ही रहा होगा न इसके कोई नियम होगें न आचार विचार होगें तथा न ही कोई व्यवहार का तरीका ही परन्तु जब इस पाशविक वृत्ति से मात्स्य न्याय द्वारा जब व्यक्ति ऊब गया होगा तभी उसने एकत्रित होकर समाज का संगठन किया होगा तथा कुछ नियम निर्धारित किये होंगें तथा यह कार्य सभी ने नहीं किया होगा इसमें भी भूमिका कुछ ही विचारशील मनीशियों की रही होगी। इस प्रकार ही समाज की स्थापना हुयी प्रतीत होती है। हम देश काल वातावरण के अनुसार भिन्न–भिन्न समाज एवं संस्कृतियों की स्थापना की बात अलग रहीं। इस प्रकार हर संस्कृति अपने अपने समाज के मनीशियों के चिरकाल के अनुभवों के आधार पर बनी हुयी होती है तथा प्रत्येक की अपनी कोई विशेषता है हमारी भारतीय संस्कृति भी अपनी कुछ विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध है यहॉ ऋषियों ने समाजिक व्यवस्था बहुत ही सोच समझकर बनाई। सर्वाधिक विशेषता तो भारतीय समाज की यह है कि यहॉ सामाजिक कार्य सौविध्य के दुष्टिकोण से संस्कारों का नियोजन तथा उसके समस्त जीवन को व्यवस्थित करने के दृष्टिकोण से आश्रम व्यवस्था बहुत ही महत्वपूर्ण है जो अन्य संस्कृतियों में कहीं भी दर्शनीय नहीं है।

इस संस्कृति के महत्व के विषय में जो भी कहा जाय कम होगा इस संस्कृति के नियम तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं तथा बड़े ही उदेश्यों को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं भले ही कालान्तर में आज उनका रूप बदल गया हो परन्तु बने तो जन सौविध्य के लिये ही थे। यदि आज वे वरदान के स्थान पर अभिषाप बने तो इसमें नियमों एवं नियम निर्माताओं का दोष नहीं, दोष आधुनिक समाज की समझ का है। अब हम यहॉ भारतीय समाज की सर्वप्रथम विशेषता वर्णव्यवस्था को लेते है।

वर्ण व्यवस्था–उदभव एवं विकासः–

भारतीय वर्ण व्यवस्था समाज में उत्पन्न कार्य समस्याओं के निराकरण हेतु कार्य सौविध्य की दृष्टि से बनाई हुयी प्रतीत होती है। यह कार्य का विभाजन तो सदा से ही चला आ रहा है जैसे आधुनिक काल में उनकी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर कार्य दिया जाता है अर्थात पद पर नियुक्त किया जाता है उसी प्रकार प्राचीन काल में कुछ मनीषियों ने समाज को चार वर्गो में विभक्त कर दिया अतः यह वर्ण व्यवस्था बहुत ही महत्वपूर्ण थी। इसीलिये कुछ पाश्चात्य विचारकों ने इस व्यवस्था की मुक्त कंठ से प्रशंसा की कुछ ने बहुत बड़ी आलोचना की सिड़नी ली ने इसकी प्रशंसा में अपनी कलम ही तोड़ दी।[1] एड्वे डुवोय ने आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व इसकी प्रशस्ति गायी थी। किन्तु मेन ने इसकी भरपूर भर्त्सना की[2] तथा शेरिंग ने भारतीय वर्ग व्यवस्था की भत्स्रना करने में कोई कसर नहीं रखी।[3] इस प्रकार कुछ विद्वानों ने इसके गुण पक्ष को देखा तो कुछ ने दोष पक्ष को जो कुछ भी हो यह वर्णव्यवस्था बनायी तो कार्य सौविध्य के लिये थी तथा उसका आधार कर्मगत था न कि जन्मगत परन्तु कालान्तर में इसका रूप जन्मगत हो गया है। ब्राह्मण कहलाने लगा तभी यह व्यवस्था दूषित हो गयी और जो एक काल में समाज के लिये वरदान थी वह धीरे धीरे अभिज्ञान बन गयी इसीलिये कुछ विचारकों ने इसकी कहीं भर्त्सना की तथापि यह व्यवस्था तो बुरी नहीं है न की इसका निर्माता ही बुरे हैं सब हम इसके उदभव पर प्रकाश डालेंगें।

वर्णो की चर्चा बहुत प्राचीन है। यह आर्यो के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदिक काल से ही चली आ रही है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है।[4] वर्णो की उत्पत्ति का सर्वप्रथम बीज ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है यहॉ विराद् पुरूष के मुख, वाहु, अरू तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की उत्पति की कथा मिलती है।[5] वर्ण व्यवस्था की उत्पति के प्रसंग में मनु कहते हैं कि संसार की प्रगति के लिये मुख, बाहु, उरू और पैरों से सूद्र को बनाया।[6] महर्षि याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से वर्णो की उत्पति से सम्बन्धित कोई श्लोक नहीं दिया तथापित याज्ञवल्क्य अपने पुनर्जन्म के प्रकरण में शुभाशुभ कर्मो के अनुसार अगला जन्म बताते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ये मनु का ही अनुसरण कर रहे हैं।

वर्णो की संख्या को जेसा ऋग्वेद ने माना है वैसा ही सभी ग्रन्थों ने स्वीकार किया है मनु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को द्विजाति कहते है चौथा वर्ण शूद्र को मानते है। इसके अतिरिक्त वे कोई पंचम वर्ण नहीं मानते है।[7] याज्ञवल्क्य भी प्रथम तीन वर्णो को द्विजाति मानते हुये शूद्र को चतुर्थ वर्ण मानते है पंचम वर्ण वे भी स्वीकार नहीं करते है।[8]

निष्कर्ष रूप से यही कहा जा सकता है कि यह वर्ण व्यवस्था बहुत प्राचीन है इसकी प्रजापति के अंगों से उत्पति तो महत्व प्रकाशन हेतु दिखाई गयी है साथ ही प्रजापति के मुख से इन वर्णो की उत्पति उसके अत्यन्त प्राचीनत्व को भी प्रतिपादित करती है।

अब इस वर्ण व्यवस्था का आधार जन्तगत था या कर्मगत इस पर विचार करते है तो वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में तीन मत दिखायी देते है। प्रथम के अनुसार केवल जाति के जन्म के द्वारा ही वर्ण माना जाता है। दूसरा मत जाति जन्म को महत्व प्रदान नहीं करता इसके अनुसार जिस व्यक्ति में जिस वर्ण के गुण कर्म होगें वह उसी वर्ण का माना जायेगा। तीसरा मत दोनों स्थितियों को आवश्यक मानता है उसमें जन्म और कर्म दोनों होने चाहिये।

वैसे हमारे धर्मशास्त्रों ने इसके कर्मगत सिद्धान्त को ही माना है आयस्तम्ब धर्म सूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उच्च वर्ण को प्राप्त होता है और उसको उसी में गिना जाना चाहिये तथा अधर्मा चरण से उच्च वर्ण अपने से नीचे वर्ण को प्राप्त हो तथा उसी में गिना जाना चाहिये।[9] इसकी सम्पुष्टि मनु ने भी की है[10] वैसे याज्ञवल्क्य स्मृति में ऐसा कोई विवेचन नहीं है फिर भी याज्ञवल्क्य ने अधिकतर मनु का ही अनुसरण किया अतः उनके विषय में भी यही मानना उचित होगा कि वे भी वर्ण को जन्मगत न मानकर कर्मगत ही मानते थे परन्तु कालन्तर में कुछ स्वार्थी तत्वों ने इसका अर्थ दूसरा ही लगा लिया परिणाम स्वरूप वर्णो के अन्तर्गत घृणा जुगुप्ता तथा ईर्ष्या का जन्म हो गया। अतः यह व्यवस्था वरदान न रहकर अभिषाप वन कर रह गयी है।

स्मृतिकार ऋग्वेद के पुरूष सूक्त का ही अनुकरण करके वर्णो की उत्पति बतलाते हैं। उनकी उत्पति गुण कर्म के अनुसार विभिन्न स्थानों से हुयी है। अतएव उनके कर्म अथवा धर्म भी अलग अलग ही होगें संसार के संरक्षण के लिये ही चारों वर्णो के कर्म भी अलग अलग किये गये है। कर्मो के अनेकों प्रकार के होने की यह व्यवस्था कि किस वर्ण का क्या कर्तव्य है अथवा क्य अकर्तव्य है सभी युगों में मान्य रही है। यहॉ हम इन चारों वर्णो के कर्मो का अध्ययन प्रस्तुत करेगें जो प्रायः– याज्ञवल्क्य स्मृति द्वारा भी पुष्ट किया जायेगा।

संदर्भ सूची :–

[1] अमरकोष– रामश्रमी टीका, संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, 1970

[2] अष्टादष स्मृति– पं0 मिहिरचन्द, नाग प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली, 1990

[3] कौटिल्य अर्थशास्त्र– आ0 शास्त्री मैसूर, 1909.

[4] अथर्ववेद– पं0 राधाकृष्ण श्रीमाली, नई दिल्ली, 1995

[5] आपस्तम्ब धर्मसूत्र– उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सिरिज, वाराणसी, 1969

[6] एतरेय ब्राह्मण– निर्णय सागर, बम्बई

[7] ऋग्वेद भाष्य भूमिका– आचार्य जगन्नाथ पाठक की टीका, चौखम्ब विद्या भवन, वाराणसी द्वितीय संस्करण, 1968

[8] ऋग्वेद– पारडी, सूरत, 1957

[9] गौतम धर्मसूत्र– पूना, 1925

[10] छान्दोग्योपनिषर्द– गीता प्रेस, गोरखपुर।

[11] पराशर स्मृति– चौखम्ब अमर भारती प्रकाषन, 1983

[12] पाणिनि– अष्टाध्यायी–चौखम्ब विद्या भवन, वाराणसी।

[13] पंचतंत्र– विष्णु शर्मा, बम्बई, 1936

[14] पंचरात्र– आचार्य रामचन्द्र मिश्र की टीका चौखम्ब विद्या भवन, वाराणसी द्वितीय संस्करण, 1976

[15] भगवत गीता– गीता प्रेस, गोरखपुर।